IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

हिंदी कहानी और किसान जीवन

डॉ. धनंजय कुमार दुबे

भारतीय समाज व्यवस्था और अर्थव्यवस्था की संरचना और मजबूती में खेती-किसानी की अहम भूमिका के बावजूद इसे विडंबना ही कहा जाएगा कि आज़ाद भारत में कृषि एक उपेक्षित क्षेत्र रहा है और किसान एक उपेक्षित तबका. देश के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में कृषि क्षेत्र की हिस्सेदारी चौदह फीसदी से अधिक है. राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) की एक रिपोर्ट के अनुसार, देश में 10.07 करोड़ परिवार खेती पर निर्भर हैं. यह संख्या देश के कुल परिवारों का 48 फीसदी है.[1] देश की लगभग आधी आबादी के जीविकोपार्जन और करोड़ों लोगों को रोजगार उपलब्ध करने वाला कृषि क्षेत्र आजादी के 70 साल बाद भी बदहाली का शिकार है. बाढ़, सूखा, कर्ज के अतिरिक्त अच्छी फसल के बावजूद लाभकारी मूल्य न मिलने की वजह से जूझते किसान आत्महत्या, विस्थापन जैसी त्रासदी झेलने के लिए बाध्य है. ब्रिटिश काल में और उससे पूर्व ज्यादातर किसान किराये की जमीन पर खेती करते थे और उन्हें जमींदारी व्यवस्था की अमानुषिक चुनौतियों से जूझना पड़ता था. आजादी के बाद देश के विभिन्न इलाकों में ज़मींदारी खत्म होने के बाद पट्टे पर खेती करने वाले किसानों की जगह, भूमिहीन या भूस्वामित्व वाले किसानों का दर्जा मिला मगर किसान जीवन की त्रासदी की कहानी खत्म नहीं हुई. खेती के तौर तरीकों, तकनीक और फसलों के स्वरूप में अनेक बदलावों और उपज में बढ़ोत्तरी के बावजूद किसानों की हालत में दीर्घकालिक बुनियादी परिवर्तन नहीं आए अपितु उसके समक्ष नयी समस्याएँ, नयी चुनौतियाँ आती रही हैं. सिस्टम की बेपरवाही की वजह से समाज के लिए अन्नदाता कहलाने वाले किसान के जीवन में कठिनाइयों का प्रवेश अलग अलग रूपों में होता रहा है.

आज खेती और किसान जीवन से जुड़े सवालों की शक्ल बदल गई है. खेती के तौर तरीकों में तकनीक और विज्ञान के प्रवेश से उपज की मात्रा और स्वरूप भी बढ़ा है. देश की लगातार बढ़ती आबादी को अगर भरपेट भोजन उपलब्ध हो पाता है, भारत अनाज के मामले में आत्मनिर्भर हो पाया है तो इसमें कृषि और किसानों की भूमिका काबिलेतारीफ है, तथापि किसानों की माली हालत में बड़ा फर्क आना बाकी है. खेती की बढ़ती पैदावार और अन्न के महत्व को देखते हुए व्यापारिक घरानों की वक्र निगाह खेती, खाद्यान्न भण्डारण और वितरण पर गई है. सरकार की मिलीभगत से वे खाद्यान्न, खाद, बीज और कीटनाशकों पर नियंत्रण कर अपने व्यवसाय का संवर्द्धन करना चाह रहे हैं. इस प्रक्रिया में अन्नदाता किसानों की जमीन और फसल हड़पकर उन्हें अपना कर्मचारी, नौकर और उपभोक्ता बनाने की चाल उनके एजेंडे में है. भूमि अधिग्रहण आज विकास का मूलमंत्र बना दिया गया है. औपनिवेशिक काल में ताल्लुकदार और ज़मींदार गरीब किसानों को उसकी जमीन से बेदखल कर देते थे. स्वाधीन भारत में कुछ कारपोरेट घराने आज सत्ता के साथ मिलकर किसानों की जमीन हड़पने का काम, कुछ भिन्न तरीके से शुरू कर चुके हैं. लेकिन भारत के किसान अपनी समस्याओं से मुक्ति के लिए औपनिवेशिक काल से ही संघर्ष करते रहे हैं. भारत में आजादी के पहले और आजादी के बाद किसानों के संघर्ष की एक लंबी और मजबूत परंपरा रही है.

दक्षिण अफ्रीका में सफल आंदोलन के बाद जब महात्मा गाँधी भारत आए और यहाँ आने के पश्चात जिस आंदोलन की अगुआई करते हुए आजादी के अपने संघर्ष की शुरुआत की, वह चंपारण में किसानों का आंदोलन था. चंपारण में अंग्रेजों द्वारा नील की खेती करने वाले किसानों के साथ की जाने वाली ज़ोर-जबर्दस्ती और शोषण के विरुद्ध 1867 एवं 1907-08 में किसानों का संघर्ष हो चुका था. गांधीजी ने बिहार के चम्पारण के इन्हीं निलहे किसानों की पीड़ा और उनकी संघर्ष चेतना को समझा और उनके पक्ष में 1917 में अपने सत्याग्रह प्रथम सफल प्रयोग भारत की धरती पर किया.[2]

इसके बाद गुजरात में खेड़ा में भी एक किसान आंदोलन हुआ जिसमें फसल खराब होने के बावजूद किसानों को लगान से छूट न मिलने कारण, पहले से संघर्षरत किसानों को गांधी जी और सरदार पटेल का साथ मिला. किसानों ने एकजुट होकर जमींदारों के अत्याचार और सरकारी शोषण से मुक्ति का संघर्ष किया और अपनी जायज मांगों के आगे सरकार को झुकाने में उन्हें सफलता मिली.[3]

बाबा रामचंद्र की अगुआई में सन 1920 में अवध में शुरू हुए किसान विद्रोह ने अँग्रेजी प्रशासन को अवध रेंट ऐक्ट 1868 में संशोधन के लिए विवश किया, साथ ही कांग्रेस की कार्ययोजना में जमींदारी एवं जागीरदारी उन्मूलन को शामिल करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई.[4] 1921 में शुरू हुए केरल के 'मालाबार विद्रोह' (मोपला

विद्रोह)[5] को भी इस कड़ी में देखा जा सकता है. इन सभी आंदोलनों ने किसानों की आवाज, उनकी बेचैनी, उनके संघर्ष और चेतना को स्पष्ट कर दिया था. ऐसे आंदोलनों ने सामंतों और ब्रिटिश सत्ता में खौफ पैदा किया और उनकी शोषण आधारित व्यवस्था को समय समय पर चुनौती भी दी. इन आंदोलनों के संगठित प्रतिरोध के कारण कई सूबों में जमींदारी प्रथा के विनाश की जमीन भी तैयार हुई. इस तरह हम देखते हैं कि अंग्रेजी राज में भारत में संगठित किसान आंदोलन ने महात्मा गाँधी के असहयोग आंदोलन से प्रेरित होकर अंग्रेज सरकार की दासता के खिलाफ लड़ाई लड़ी और जमींदारों के शोषण से मुक्ति के लिए निर्णायक संघर्ष किया.

आजादी के बाद भी किसानों की दशा में कोई बुनियादी सुधार नहीं होने की वजह से तमाम किसान विद्रोह देखने को मिले. तेलंगाना आंदोलन[6] और इन्हीं में से एक था. आधुनिक भारत के इतिहास का सबसे बड़ा कृषक आंदोलन था, जिसने 3 हजार गांवों तथा 30 लाख लोगों को प्रभावित किया. यह आंदोलन इसलिए हुआ क्योंकि तेलंगाना क्षेत्र में स्थानीय देशमुखों ने पटेल तथा पटवारियों की मिलीभगत से अधिकांश उपजाऊ भूमि पर कब्जा कर लिया. इन देशमुखों को स्थानीय प्रशासन एवं पुलिस के साथ ही निजाम की सरकार का भी संरक्षण प्राप्त था. इन्होंने किसानों तथा खेतिहर मजदूरों का भरपूर शोषण किया. सामंती दमन तथा जबरन वसूली स्थानीय किसानों के भाग्य की नियति बन गये. इस आंदोलन में विद्रोहियों ने शोषकों के विरुद्ध गुरिल्ला आक्रमण की नीति अपनायी. किसानों ने 'संघम ' के रूप में संगठित होकर देशमुखों पर आक्रमण प्रारंभ कर दिये.[7] इन्होंने हथियारों के रूप में लाठियों, पत्थर के टुकड़ों एवं मिर्च के पाउडर का उपयोग किया. सरकार ने आंदोलनकारियों के प्रति अत्यंत निर्ममता का रुख अपनाया और भरसक इसके दमन का प्रयास किया. अगस्त 1947 से सितम्बर 1948 के मध्य आंदोलन अपने चरमोत्कर्ष पर था. हैदराबाद विलय के संदर्भ में भारतीय सेना ने जब हैदराबाद को विजित कर लिया तो यह आंदोलन धीरे-धीरे समाप्त हो गया.

इस लिहाज से देखें तो यह ऐतिहासिक तथ्य है कि अन्याय और शोषण के खिलाफ भारत के किसानों के संघर्ष की एक सशक्त और ऐतिहासिक परम्परा रही है. किसानों के शोषण और संघर्ष पर विचार करते हुए हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि 'शोषण का इतिहास जितना पुराना है, उतना ही पुराना उससे संघर्ष का इतिहास भी है.

किसानों के दुख, उसकी तकलीफ़ों से हिन्दी का लेखक भी अपना जुडाव लगातार महसूस करता रहा है. हिन्दी के कई कहानीकारों ने किसानों के जीवन तथा उनके संघर्ष को केन्द्र में रखकर कई उल्लेखनीय कहानियाँ लिखी हैं. जिनमें किसान की संघर्ष चेतना के साथ उसकी जिजीविषा और उसकी आंदोलनधर्मी चेतना का विश्लेषण किया गया है

हिंदी साहित्य में जब भी कोई □□□□□ कहानियों की हो या किसान जीवन की, हमारे जेहन में सबसे पहले प्रेमचंद का नाम आता है. दरअसल सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में प्रेमचंद को आज भी किसान जीवन का सबसे बड़ा कथाकार माना जाता है. प्रेमचंद ने अपने कई लेखों, कहानियों और उपन्यासों में किसानों के जीवन संघर्ष का बड़ा ही यथार्थ चित्रण किया है. प्रेमचंद के मानस निर्माण में एक ओर प्रगतिशील विचारों और चिंतन की महत्वपूर्ण भूमिका थी तो दूसरी ओर वे गांधी जी से भी गहरे प्रभावित थे. गांधी जी से प्रभावित होने की संभवत: सबसे बड़ी वजह यही रही कि गांधी जी ने भी भारत आते ही स्वयं को भारतीय गांवों और किसानों से जोड़ा तो स्वयं प्रेमचंद भी ग्राम समाज तथा खेती किसानी की स्थितियों के गहरे जानकार थे और किसानों की दुर्दशा के विरुद्ध जागरूक भी. ऐसे में महात्मा गाँधी के विचारों से प्रभावित प्रेमचंद द्वारा किसान जीवन से जुड़े विभिन्न पहलुओं को अभिव्यक्त करने का सिलसिला और तेज हो गया.

किसानों की समस्याओं की पड़ताल करने तथा जीवन के यथार्थ को व्यक्त करने में प्रेमचंद का जवाब नहीं. प्रेमचंद पहले ऐसे रचनाकार थे जिन्होने जमींदारी प्रथा की अमानवीयता को पूरी ताकत के साथ न सिर्फ व्यक्त किया अपितु सामंती जीवनदृष्टि को किसानों और गाँव के विकास में ही नहीं अपितु आजादी की राह की बड़ी कठिनाइयों में से एक माना था. वे अच्छी तरह समझते थे कि विदेशी पराधीनता के साथ ही सामंती शोषण और साहूकारों के चंगुल से मुक्त हुए बिना किसानों की मुक्ति संभव नहीं और किसानों की दुर्दशा को खत्म किए बिना समाज का वास्तविक विकास संभव नहीं. सन् 1932 के दिसम्बर में लिखे अपने एक लेख 'हतभागे किसान' में प्रेमचंद ने लिखा था, "भारत के अस्सी फीसदी आदमी खेती करते हैं. कई फीसदी वह हैं, जो अपनी आजीविका के लिए किसानों के मुहताज हैं, जैसे गाँव के बढ़ई, लुहार आदि. राष्ट्र के हाथ में जो कुछ विभूति है, वह इन्हीं किसानों और मज़दूरों की मेहनत का सदक़ा है. हमारे स्कूल और विद्यालय, हमारी पुलिस और फ़ौज, हमारी अदालतें और कचहरियाँ सब उन्हीं की कमाई के बल पर चलती हैं, लेकिन वही जो राष्ट्र के अन्न और वस्त्रदाता हैं, पेट भर अन्न को तरसते हैं, जाड़े-पाले में ठिठुरते हैं और मक्खियों की तरह मरते हैं.''[8] एक अन्य लेख में वे लिखते हैं कि खेती भारत का मुख्य व्यवसाय है लेकिन खेती करने वाले किसान को नोंचनेवाले तो सब हैं, उसको प्रोत्साहन देनेवाला कोई नहीं. उसे भूखों मारकर, पैसे-पैसे के लिए महाजन का मुँह देखकर, अपना जीवन काटना पड़ता है. लेकिन उसकी हालत को समझने वाला कोई नहीं. उन्होने लिखा- "भारतीय किसानों की इस समय जैसी दयनीय दशा है, उसे कोई शब्दों में अंकित नहीं कर सकता. उनकी दुर्दशा वे स्वयं जानते हैं या उनका भगवान जानता है. जमींदार को समय पर मालगुजारी चाहिए, सरकार को समय पर लगाना चाहिए ...किसानों को केवल इतना ही मालूम होता है कि उनकी विपत्ति बढ़ती जा रही है.[9] प्रेमचंद ने अपनी कहानियों

में गाँव और किसान जीवन के यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हुए इन्हीं समस्याओं से मुठभेड़ की है.[10] प्रेमचंद के अतिरिक्त हिन्दी के कई अन्य कहानीकारों ने भी ग्रामीण और किसान जन-जीवन को केन्द्र में रखकर कई उल्लेखनीय कहानियों की रचना की और यह कार्य बदस्तूर जारी है.

किसान को अपने खेत अपनी जमीन से अत्यधिक लगाव और किसी भी कीमत पर उससे दूर न होने की कथा है, डॉ. शिवशंकर निवास की कहानी 'आदमी आदमी है, चिड़िया नहीं'.[11] इस कहानी का वामदेव लंबी चौड़ी कद-काठी का मेहनती इंसान जो कि इलाके भर में अपनी मेहनत के लिए प्रसिद्ध है, बेहद परिश्रमी होने के अतिरिक्त बेहद खुद्दार और गाँव के समूहिक काम में बढ़-चढ़ कर हिस्सेदारी करने वाला व्यक्ति है. इसी गाँव के शहरी अमीर इन्द्रनाथ जब गाँव आते हैं तो गाँव के अधिकांश लोग मदद की उम्मीद में उनके आगे पीछे घूमते हैं, परंतु वामदेव उनके आग्रह के बावजूद शहर के उनके फार्महाऊस पर काम काम करने से इंकार कर देता है. यह कहानी एक खुद्दार इंसान की अपने ग्राम समाज से प्रेम और लगाव को व्यक्त करती है जो गाँव से बाहर जाने के किसी भी लालच को ठेंगा दिखाते हुए कहता है कि अगर हम चाहें तो गाँव में इतना काम है कि बाहर जाने की आवश्यकता नहीं.

किसान के शोषण और उसकी पीड़ा तथा अकाल के समय में उसके अत्यंत दारुण दशा को व्यक्त करती ललित किशोर सिंह की कहानी है 'दुर्भिक्ष'.[12] इकबाल बहादुर वर्मा की कहानी 'विजय'[13] गांव में अकाल के कारण भुखमरी फैल जाने तथा ऐसी स्थिति में शहर में पलायन के बावजूद नारकीय जीवन जीने को विवश युवक की कथा कहती है. नर्मदेश्वर की कहानी 'फंदा'[14] यह बताती है कि किसान के जीवन में उसकी जमीन और उसके साथ ही उसके पशुओं की अहम भूमिका होती है. ये सिर्फ उसके जीवनयापन के साधन ही नहीं होते अपितु इसके साथ उसका एक गहरा भावनात्मक संबंध भी होता है. किसान खुद रूखी सुखी खाकर या उपवास रखकर गुजारा कर सकता है लेकिन अपने पशु को भूखा नहीं रख सकता. इसके साथ ही सरकार द्वारा बांध के नाम पर जमीन अधिग्रहण और मुआवजे में हीलहवाली, के साथ ही बांध बनाने में हो रहे भ्रष्टाचार और और मनमानी, सूदखोरों के चंगुल में फँसकर मनमाना ब्याज चुकाने को विवश किसान, उसके तनाव और आत्महत्या को उकसाने वाली स्थितियों को उजागर करती है यह कहानी. अभाव, अंधविश्वास और शोषण की अनवरत चक्की में पिसते किसान गफूर की दीनता को बयान करती है कहानी 'महेश'.[15] गफ़ूर भूमिहीन किसान है जो किराए पर खेत लेकर खेती करता है. अपनी भूखमरी के बावजूद अपने प्यारे बैल महेश को बेचना नहीं चाहता और उसे खिलाने की चिंता में घुलता रहता है. महेश द्वारा घड़े में सींग लगाने पर गुस्से से उसे डंडे से मार देता है, जिससे महेश की मृत्यु हो जाती है. रात में अपने बेटी समेत गाँव छोडकर चला जाता है. दिन भर हाड़ तोड़ परिश्रम करने के बावजूद जमींदारों से लेकर महाजनों के ऋण जाल में किसानों के फंसे रहने तथा उनकी हालत में सुधार न होने, उनकी दुर्दशा होने को कहानियों ने अपना विषय बनाया है, राजेंद्र लहरिया की कहानी 'बेल'[16] में. इस कहानी का सरमन भूमिहीन किसान है और किराए पर खेत लेकर खेती करता है. बिल्कुल वर्षा नहीं होने के कारण उसका खेत सूखा पड़ जाता है और कर्ज लेकर खरीदा गया बैल भी समुचित चारे और पानी के अभाव में मर जाता है. फणीशवरनाथ रेणु की कहानी 'हड्डियों का पुल'[17] बिहार के एक बड़े इलाके में अकाल भीषण अकाल और उसकी वजह से भुखमरी फैलने की स्थिति को गहराई से बयान करती है. प्रेस और राजनेताओं के लिए यह राजनीति और बयानबाजी का अवसर है, जबकि वहां के निवासियों के लिए यह जीवन मरण का प्रश्न बना हुआ है.

गाँव में अपनी खेतीबारी से गुजारा न होने की स्थिति में अगर कोई युवा शहर भी जाता है तो भी प्राय: अपनी कठिनाइयों से मुक्त नहीं हो पाता. गांवों और खासकर पहाड़ी गाँव की खेती से मुश्किल से गुजारा हो पाने और नयी पीढ़ी का शहरों में पलायन, लेकिन अपनी जड़ों से जुड़े होने के दर्द को बयान करती कहानी है- पोटली में गाँव.[18] 'ठौर'[19] कहानी का नरेश भी गाँव में खेती-किसानी से परिवार चला पाने में असमर्थ होकर शहर जाकर मजदूरी करके गुजारा करने का ख्वाब देखता है. वह अपनी पत्नी और दो बच्चों के परिवार समेत कलकत्ता पहुँच तो जाता है परंतु वहाँ भी काम न मिलने से भूखमरी की समस्या से इस द्वंद्व में फंस जाता है कि अब वह क्या करे.

हिंदी कहानियों में बदलते समय के साथ किसान जीवन की विविध चुनौतियों और किसानों की समस्याओं को नए संदर्भों में देखने परखने और उनकी आवाज को बुलंद करने के प्रयास होते रहे हैं. किसानों को उसकी पैदावार का लाभकारी मूल्य न मिलने, छोटे और सीमान्त किसानों की सबसे अधिक दुर्दशा, विस्थापन, खेती की बढ़ती लागत और तदनुपात आमदनी में बढ़ोतरी न होने से किसानों पर कर्ज के बढ़ते बोझ, जीवन की चुनौतियों में असहायता और लाचारी में आत्महत्या के मुद्दों को कहानियों में लगातार उठाया गया है. इसके अतिरिक्त कारपोरेट केंद्रित सरकारी नीति, किसानों के ज़मीन अधिग्रहण और फसल ख़राब होने पर मुआवजा वितरण में देरी, मनमानी, भेदभाव, दलाली और भ्रष्टाचार, कारपोरेट खेती के दुष्परिणाम, अपनी □□□□ □□□□□ के लिए किसानों द्वारा किए जा रहे संघर्ष, बेबसी और लाचारी जैसे ज्वलंत मुद्दों को उठाया गया है. इन कहानियों में किसानों के दु:ख-दर्द, उसके संघर्ष, उसकी जिजीविषा और कुछ कहानियों में उसकी आंदोलनधर्मी चेतना का भी विश्लेषण किया गया है. यह सच है कि कारपोरेट और सत्ता की मिलीभगत, व्यापारियों की जमाखोरी, मुनाफाखोरी, मुक्त व्यापार, पेटेंट, डंकल जैसे राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय समझौतों ने देश की कृषि व्यवस्था के

अंदर एक ऐसी लम्पट व्यावसायिक संस्कृति निर्मित की है जिसके केंद्र में सिर्फ बाजार है. बाजारवादी व्यवस्था के खेल से भारत का किसान पीड़ित, परेशान और आक्रोशित है.

हिन्दी कहानी अपने आरंभिक दौर से ही किसानों की समस्याओं को लेकर कितनी सचेत और चिंतित रही है उसका उदाहरण है, सन 1934 में प्रकाशित श्रीनाथ सिंह की कहानी 'गरीबों का स्वर्ग'. इस कहानी में गांव, गरीबी, किसानी का दर्द दिखाई देता है.[20] श्रीनाथ सिंह (1901-1996) द्विवेदी युग के रचनाकार थे. उन्होंने 'सरस्वती' का भी संपादन किया था. पांडेय बेचन शर्मा उग्र की कहानी 'अभागा किसान' 1929 के आसपास लिखी गई थी. कहानी का मुख्य पात्र भिक्खन अपनी बेटी की शादी के लिए महाजन से कुछ रुपये कर्ज लेता है. फसल खराब हो जाने के कारण वह कर्ज नहीं लौटा पाता है. भिक्खन को जमींदार के लठैत पकड़ कर ले जाते हैं. उसकी पत्नी दो बच्चों और बूढ़ी सास की दशा देख कर धैर्य खो देती है. वह दोनों छोटे बच्चों को खाना देने के बहाने एक तालाब के पास ले जाती है और दोनों का गला दबा कर तालाब में फेंकने के बाद खुद तालाब में कूद कर आत्महत्या कर लेती है. हिंदी कहानी में कर्ज में डूबे किसान परिवार की आत्महत्या की त्रासदी का यह वर्णन आज से कोई सौ साल पहले की घटना पर आधारित है.[21]

इस कहानी में किसान परिवार की जिस त्रासदी का वर्णन किया गया है, आज़ादी के लगभग साढ़े सात दशकों के बाद भी यह खत्म नहीं हुई है. आज भी कर्ज से दबे किसान, फसल खराब होने पर बैंक या स्थानीय साहूकार के कर्ज न चुका पाने के कारण भिक्खन के परिवार की तरह आत्महत्या करने को विवश हैं. एक आंकड़े के मुताबिक पिछले दो दशकों में ही देश में साढ़े तीन लाख किसानों ने आत्महत्या कर ली है.

कर्ज लेकर खेती करने और असमय की प्राकृतिक आपदा में फसल के नष्ट होने तथा सरकारी राहत के नाम पर बंदरबाँट समेत किसानों की आत्महत्या के मुद्दे को केंद्रित करती है शिव किशोर की कहानी – 'गुहार'[22] इस कहानी में सद्धन और वासुदेव दो किसान हैं. दोनों मित्र हैं. दोनों प्राकृतिक आपदा में बर्बाद हुई फसल के लिए सरकारी राहत न मिल पाने की वजह से परेशान हैं. वासुदेव सरकारी अधिकारी से निवेदन करता है– "साहब लोगों, मेरी सब की सब फसल बर्बाद हो गयी है. मेरे खेत देख लिए जाएं. मेरा जो सबसे बड़े रकबे वाला खेत है, उसमें गेहूँ बोया था. उसकी बची खुची फसल को मैंने हाथ भी नहीं लगाया है. कुछ हाथ लगने वाला भी नहीं था. मैं बहुत मुसीबत में हूँ. मुझे कोई भी राहत राशि नहीं मिली है." वासुदेव का यह दुख यह है कि वह अपनी बर्बाद हुई फसल के लिए सरकारी राहत चाहता है. उसे सरकारी लालफीताशाही का नहीं पता कि राहत के नाम पर पीड़ित किसानों को दी जाने वाली सरकारी राहत की राशि किसी भद्दे मजाक की तरह होती है जिससे किसानों को कोई राहत मिलने वाली नहीं है. वासुदेव दिनभर घर के अंदर बंद रहता है. वासुदेव लगातार छह दिनों तक शाम को घर से निकलकर अपने खेत पर जाता है और ड्रम पीटता है और आख़िरकार एक दिन खेत में ही ख़ुदकुशी कर लेता है. पुलिस आती है. विधायक, सांसद, राज्य के मंत्री और सरकारी मुलाजिम गाँव का दौरा करते हैं. केंद्र और राज्य की अलग-अलग दलों से जुड़े नेता एक दूसरे की सरकारों को किसानों की आत्महत्या के लिए दोषी ठहराते हैं.

वासुदेव के परिवार को राहत का चेक देकर जब राज्य के माननीय मंत्री जी वापस जाने लगते हैं तो उसका मित्र सद्घन उनसे पूछता है– "साब, यह धन आप दूसरे किसानों की आत्महत्या पर भी देंगे? ...परिवार में हम सात जन हैं...कुछ दिन तो हम दो जून की रोटी खा सकते हैं...कुछ समय के लिए जिंदगी आगे बढ़ा सकते हैं. बोलिये, साब, बोलिये...माननीय अवाक थे." कहानी के अंत में सद्घन का यह संवाद पाठकों को अत्यंत विचलित करता है, एक मजबूर किसान के लिए अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए अपनी मेहनत और ज़िंदगी की जगह आत्महत्या अधिक उचित विकल्प लगने लगता है. यह कहानी किसानों के प्रति प्रशासन की गंभीरता पर गंभीर सवाल खड़े करती है.

किसानी जीवन को केन्द्रित करने वाले कहानीकारों में सुरेश कांटक भी शामिल हैं. इनकी कहानी 'सेमर का फूल'[23] में किसान मूसई अपने परिवार के साथ खेत में लगातार काम करता है और धान की अच्छी फसल देखकर मन ही मन बहुत हर्षित होता है. फसल घर आते ही खेत मालिक के द्वारा बीज, खाद, मजदूरी आदि के रूप में एक बड़ा खर्चा रख दिए जाने के कारण अनपढ़ मूसई कुछ भी कह पाने में असमर्थ होता है और अच्छी फसल के बावजूद उसे सिर्फ छह मन धान प्राप्त होता है. मुसई मन मसोस कर रह जाता है. किसान की समस्या यहीं तक नहीं रुकती है. किसानों की पैदावार का उचित लाभकारी मूल्य या न्यूनतम समर्थन मूल्य न मिलना खेती के पेशे से जुड़े भारत के किसानों के लिए एक अहम मुद्दा है. भारतीय खाद्य निगम हर साल सरकार द्वारा घोषित विभिन्न फसलों के न्यूनतम समर्थन मूल्य पर किसानों का अनाज खरीदता हैं. लेकिन सरकार द्वारा घोषित समर्थन मूल्य का लाभ गरीब या छोटे किसान नहीं उठा पाते क्योंकि कस्बों के अनाज व्यापारी गरीबों का अनाज सस्ते में खरीदकर, क्रय केन्द्रों पर अपने प्रभाव और लेन-देन का इस्तेमाल कर महंगे दाम पर बेच देते हैं. सुरेश कांटक ने इस समस्या को अपनी कहानी 'किसान क्या करे?' में उठाया है.

आजादी के बाद देश में कृषि के विकास के लिए सरकार द्वारा चलाई गई कई योजनाओं में एक महत्वपूर्ण योजना थी बांध बांधकर बाढ़ और बारिश के पानी को जमाकर या बड़ी नदियों से नहर के माध्यम से पानी लाकर छोटी-छोटी नहरों के द्वारा किसानों के खेत तक पानी का बंदोबस्त करना. विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के अंतर्गत सरकार इसके लिए राशि मुहैया करवाती थी. देश में हरित क्रांति की सफलता, अन्न उत्पादन में देश को आत्मनिर्भर बनाने और देश में खाद्यान्न सुरक्षा को बनाए रखने में इन योजनाओं की महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक भूमिका थी.

लेकिन ठेकेदारी प्रथा के कारण उचित समय पर बांधों की मरम्मत और नहरों की सफाई या गाद की निकासी न होने या देर से होने का खामियाजा आख़िरकार किसानों को ही भुगतना पड़ता है, क्योंकि सही समय पर पानी के अभाव में उनकी फसल ख़राब हो जाती है. शिव किशोर की कहानी 'आधी जमीन'[24] में किसानों के इस दर्द को बड़े ही मार्मिक तरीके से उठाया गया है कि सिचाई के एकमात्र साधन माइनर कैनाल की विगत तीन वर्षों से सफाई नहीं कराइ गई, जिसके कारण उसमें गाद होने के कारण खेतों तक पानी नहीं पहुँच पाता. विपक्ष के नेताओं और मीडिया के हो-हल्ला करने के बाद आख़िरकार माइनर कैनाल की सफाई काफी देर से शुरू होती है लेकिन तबतक कैनाल में पानी के प्रवाह की समयावधि समाप्त हो जाती है. जिसकी वजह से भानु के खेतों तक पानी नहीं पहुँच पाता. इधर बारिश भी समय समय से नहीं होती. ठेके पर खेती करनेवाले कहानी के मुख्य पात्र भानू की गेहूं की फसल पानी की प्रतीक्षा करते-करते आख़िरकार ख़राब हो जाती है क्योंकि और खेत में सिचाई के लिए पानी का कोई वैकल्पिक साधन उसके पास या तो मौजूद नहीं या फिर अत्यधिक महंगा होने के कारण उसके सामर्थ्य से बाहर है.

फसल ख़राब होने के बावजूद और ठेके पर जमीन लेकर खेती करने की वजह से भूस्वामी को गेहूं की निश्चित मात्रा में देनदारी से वह बच नहीं सकता और उसके बाद उसके पास उतना भी गेहूं नहीं बचता है जिससे उसकी घर-गृहस्थी की न्यूनतम जरूरत पूरी हो सके. ऐसे में बेटी का विवाह करने की उसकी योजना पर पानी फिरने लगता है. ऐसे में भानू के मन में अपनी जीवन-लीला समाप्त कर लेने का विचार आता है. वह बाजार से रस्सी खरीद कर लाता है. रात में चारपाई पर ख़ुदकुशी करने-न करने के उधेड़बुन में गाँव के साहूकारों से पैसे उधार लेकर या जमीन के कुछ हिस्से बेचकर बेटी की शादी करने तक वह आत्महत्या का विचार त्याग देता है. आख़िरकार विवश होकर उसे पूरी जमीन गिरवी रखनी पड़ती है. यह समस्या वास्तव में अधिकांश गरीब किसानों की है, जो कागजों में किसानों के नाम पर बनी तमाम योजनाओं के बावजूद सरकारी लापरवाही और लालफ़ीताशाही समेत महाजन के चंगुल के शिकार हैं.

हरित क्रांति को भारत में कृषि क्रांति का एक महत्वपूर्ण पड़ाव माना जाता है. भारत में हरित क्रांति की शुरुआत सन 1966-67 में शुरू करने का श्रेय नोबल पुरस्कार विजेता प्रोफेसर नारमन बोरलॉग को जाता है. भारत में एम. एस. स्वामीनाथन को इसका जनक माना जाता है. भारत के तत्कालीन के कृषि एवं खाद्य मन्त्री बाबू जगजीवन राम ने एम°एस° स्वामीनाथन कमेटी की सिफारिशों पर हरित क्रांति का सफलतम संचालन किया. उच्च उत्पादक क्षमता वाले प्रसंसाधित बीजों का प्रयोग, आधुनिक उपकरणों का इस्तेमाल, सिंचाई की व्यवस्था, कृत्रिम खादों एवं कीटनाशकों के प्रयोग आदि के कारण संभव हुई. इस क्रांति ने खाद्यान्न उत्पादन में देश को आत्मनिर्भर बनाया और देश से भुखमरी ख़त्म करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई.[25]

हरित क्रांति हमारे देश की कृषि नीति की एक बड़ी उपलब्धि मानी जाती है. देश की लगातार बढ़ती आबादी के मद्देनजर पैदावार बढ़ाने और देश को खाद्यान्न सुरक्षा प्रदान करने के लिए सरकार की ओर से हरित क्रांति लागू करने का जो फैला किया गया उसके कारण किसानों पर अधिक से अधिक पैदावार करने बढ़ाने का दबाव बढ़ा. पंजाब और देश के अन्य कई राज्यों में इस क्रांति को महत्वाकांक्षी तौर पर लागू किया गया. परंपरागत खेती के तौर-तरीकों से यह क्रांति सफल नहीं हो सकती थी, इसलिए किसानों को खाद और कीटनाशक के अधिक से अधिक इस्तेमाल के लिए प्रोत्साहित किया गया ताकि कम से कम जमीन में अधिक से अधिक फसल की उपज हो सके. देखादेखी देश भर के किसान इस मुहिम में जुट गए जिसके कारण खेती के खर्चे भी बढ़ गए.[26] खाद के अधिक इस्तेमाल से जमीन की उर्वरता भी कम होती चली गई. हरित क्रांति के अंतर्गत प्रयुक्त कृषि यंत्रीकरण के फलस्वरूप श्रम-विस्थापन को बढ़ावा मिला है. ग्रामीण जनसंख्या का रोज़गार की तलाश में शहरों की ओर पलायन करने का यह भी एक कारण है. हरित क्रांति के सकारात्मक पक्ष से देश का बड़े पैमाने पर भला हुआ और खाद्यान के मामले में देश आत्मनिर्भर हुआ, लेकिन इस पूरी प्रक्रिया में किसानों खासकर छोटे किसानों के हितों की रक्षा पर ध्यान नहीं दिया गया. जिससे खेतिहर के लिए खेती लगातार एक अनाकर्षक क्षेत्र बनता गया, भले ही वह कारपोरेट जगत के लिए एक आकर्षक अवसर क्यों न हो.

संदीप मील की कहानी 'बोल काश्तकार'[27] में भी खेती से जुड़े इस पक्ष को दर्शाने की कोशिश की गई है. कहानी में खेती के तौर तरीकों में बदलाव से उसकी बढ़ती लागत और तुलनात्मक रूप से आमदनी में वृद्धि न होने के कारण किसान की आर्थिक स्थिति के खस्ताहाल होते जाने और कर्ज के चक्र में फँसकर उसकी ज़िंदगी की दुर्दशा को यह कहानी चित्रित करती है. जागेराम अपने पुत्र चाँद सिंह को खेतों में खाद और कीटनाशक के प्रयोग नहीं करने और उसके खतरे को समझाते हुए कहता है कि 'इंसान की तरह खेत को भी लत लगती है. अगर एक बार विदेशी खाद की लत लग गई तो गोबर की खाद असर ही नहीं करेगी.' उसे यह पता है कि यह तरीका जमीन की स्वाभाविक उर्वरता को भी प्रभावित करेगा. लेकिन उसका किसान बेटा चाँद सिंह उसे बताए बिना औरों की देखा-देखी, चुपके से खाद लाकर खेत में डाल देता है. उससे फसल तो अच्छी होती है परंतु धीरे धीरे खाद की अधिक मात्रा की आवश्यकता पड़ने लगती है, जिससे खेती का खर्चा लगातार बढ़ता जाता है. तेल की कीमतों में वृद्धि का असर भी खेती के कुल खर्चे में बढ़ोत्तरी के रूप में सामने आता है. यह खर्च आय की तुलना में लगातार बढ़ती जाती है और किसान लगातार कर्जदार होता जाता है. जागेराम का पोता नीर, जो कि खेती करता है, फटेहाल जीवन जीने को अभिशप्त है. नीर अपने दादा की वो बातें याद करता है कि 'काश्तकार

राम के मारे नहीं मरता, राज के मारे मर जाता है.' शासन व्यवस्था की किसानों के प्रति बेरुखी को यह कहानी सफलतापूर्वक बयान करती है.

इसके साथ ही यह कहानी एक संकेत यह भी करती है कि कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए किसानों द्वारा खाद और कीटनाशकों के इस्तेमाल ने मनुष्य की सेहत, पशु-पक्षियों, अन्य जीव-जंतुओं और पर्यावरण पर भी दुष्प्रभाव डाला- "पहले बरसात के बाद मेढक टर्राने लगते थे. अचानक से धरती के अंदर से बहुत से जानवर निकल आते और उनकी आवाज के शोर से जो संगीतमय रातें बनती थीं, वे पूरे परिवेश को ही बदल देतीं. सोई हुई दुनिया जैसे जग पड़ती, जैसे सारी प्रकृति खेतों की ओर बढ़ने की तैयारी कर रही हो. आज ऐसा कुछ नहीं हुआ. आँधी और बारिश आने के बाद चारों तरफ सन्नाटा था. नीर की साँसों के अलावा किसी जानवर की आवाज सुनाई नहीं दे रही थी. गहरी खामोशी थी. जानवर तो अधिकांश खत्म ही हो गए थे जमीन में डालनेवाले जहरों से. नीर सोच रहा था कि इतनी खतरनाक दवाओं से पैदा हुआ अनाज खाकर इंसान कैसे जिंदा रह रहा है! उसे भी मर जाना चाहिए था... जैसे जानवर मरे हैं." खेत के कीटनाशकों के प्रभाव से चीड़ियों को मरते देख कर नीर को यह चिंता होती है कि मनुष्य भला इस अन्न को खाकर जीवित कैसे बच जाता है! इस लिहाज से यह कहानी भारत में परंपरागत और आधुनिक खेती के तौर-तरीके के द्वंद्व के कुछ महत्वपूर्ण बिंदुओं को रेखांकित करती है.

तथाकथित विकास के नाम पर कार्पोरेट और पूंजीपतियों को लाभ पहुंचाने, निर्यात को बढ़ावा देने के लिए सरकार द्वारा स्थापित किए जाने वाले आर्थिक क्षेत्रों को 'सेज'[28] या स्पेशल इकॉनामिक जोन (SEZ) कहा जाता है. भारत सरकार ने सेज की शुरुआत 2005 में की. सेज से होने वाले निर्यात पर कस्टम ड्यूटी, एक्साइज ड्यूटी, आयकर, मिनिमन अल्टरनेट टैक्स, डिविडेंड डिस्ट्रीब्यूशन टैक्स कुछ भी नहीं लगता. सेज के नाम पर भूमि अधिग्रहण के प्रपंच का रहस्योद्घाटन करती है, कृष्णकांत की कहानी 'मुआवजा'.[29] खेती कर जैसे-तैसे गुजारा करनेवाले गाँव के किसानों को विकास का सपना दिखाया जाता है- "सरकार ने फैसला किया है कि इस इलाके से कुछ जमीन लेकर एक ऐसा क्षेत्र विकसित किया जायेगा जहां पर वैज्ञानिक ढंग से खेती होगी. यह काम उद्योगपतियों को सौंपा जाएगा.''

किसानों की जमीन हथियाने के लिए सरकार के पास मुआवजे की घोषणा सबसे आसान तरीका है. विकास के नाम पर खेले जा रहे इस खेल को आज का किसान समझने लगा है. वह जानता है कि यह बड़े पूँजीपतियों को मालामाल करने का सरकारी जरिया है और यह भी कि जमीन के बदले प्राप्त मुआवजे से उसका कोई भला नहीं होने वाला - "पर कितने दिन चलेगा यह मुआवजा? छह महीने...साल भर...दो साल...पर उसके बाद? खेत तो हमारे पुरखों के हैं. उन्होंने भी इसी जमीन में रोटियां उगाईं. हम भी उगा रहे. ये बची रहेंगी तो हमारे बच्चे भी अपना पेट भर सकेंगे. यह हमारे बच्चों को अनाथ करने की साजिश है...हमारी ही जमीन हमसे छीनकर अनाज उगाएंगे और कल को हमी सोने के भाव गेहूं के दाने खरीदेंगे. यह किससे पूछकर हो रहा है? क्यों हो रहा है? कैसा विकास होगा? बिना हमारी राय लिए, बिना हमारी मरजी के यह कैसा विकास होगा? किसके लिए होगा?' विकास के नाम पर सरकार की मनमानी के खिलाफ जब किसान आन्दोलन करते हैं तो उनके प्रति सरकारी तंत्र की अमानवीयता का विद्रूप और वीभत्स चेहरा सामने आता है. पूरी प्रशासनिक और पुलिस की मशीनरी किसानों की जायज बातों को सुनने की जगह उन्हें धमकाने और सबक सिखाने के लिए किसी भी हद तक जाने को तैयार हो जाती है. इस कहानी में सबक सिखाने के लिए गाँव के लगभग सभी पुरुषों से अंधाधुंध मारपीट की जाती है बल्कि कईयों को मौत के घाट भी उतार दिया जाता है. यही नहीं किसानों के घरों में घुसकर कई महिलाओं से अभद्रता और युवतियों से बलात्कार भी किया जाता है. पुलिस और प्रशासन मिलकर गाँव में आतंक का वह राज्य कायम करते हैं कि इन सारे अन्याय और अपराध के खिलाफ खड़े होने वाला कोई नहीं बच जाता.

यह कहानी एक और संदेश की ओर संकेत करती है कि ज़्यादातर मामलों में पढ़ा-लिखा युवक खेती नहीं करना चाहता. ऐसे में 'मुआवजा' का अनुज, शहर से गांव खेती करने आता है तो गांव के लोग हैरान हो जाते हैं. "अनुज जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से राजनीति शास्त्र में एम.ए. करके लौटा तो गांव की चौपालों में बतकूटन के एक नए मुद्दे के बतौर शामिल हो गया. उसे लेकर गांव में एक जुमला चल पड़ा था- पढ़े फारसी बेचौं तेल, यह देखौ किस्मत कै खेल...बुजुर्गवार कहते- अरे भाई, हम पढ़े लिखे नहीं थे तो भी तो हमने खेती की. उसने तीस बरस की उम्र पढ़ाई में लगा कर क्या उखाड़ लिया? अब वह भी खेती ही करेगा. मूर्खों का कहीं गांव बसता है क्या? इतनी उम्र में तो हम पांच बच्चों के बाप थे. जब खेती ही करनी थी तो दिल्ली-पिल्ली जाकर लाखों रुपया क्यों फूंक आया?" लेकिन वही अनुज खेती के जरिए एक मिसाल कायम करने की कोशिश करता है और कामयाब भी होता है जबतक कि सरकारी अमला सेज के नाम पर वहाँ की जमीन को ज़ोर-जबर्दस्ती कब्जा नहीं कर लेता. कहानी यह विचार प्रस्तावित करती है कि सरकारी नीतियाँ बिना किसानों और गांवों की चिंता किए बगैर किसानों और किसानी के विरुद्ध बनाई जाती हैं. साथ ही यह भी कि पुलिस प्रशासन अभी भी औपनिवेशिक मानसिकता से पूरी तरह निकल नहीं पाया है और उसे अभी भी इंसानियत के पाठ सिखाए जाने की कितनी आवश्यकता है.

मदन मोहन की कहानी 'जहरीली रोशनियों के बीच'[30] में बदलते गांव और गांव में चलाई जाने वाली योजनाओं में लूट, नेताओं के झूठ और किसान आत्महत्या की भयावह तस्वीर हमारे सामने उभरती है. इस कहानी की मुख्य पात्र सुगना देवी है. यह कहानी यह दिखाती है कि गरीबों के लिए बनाई सरकारी योजनाएं किस तरह

गरीब किसानों की जिंदगी की जद्दोजहद को और कठिन बना देती हैं. सुगना देवी सरकार द्वारा चलाई जा रही तथाकथित कल्याणकारी योजनाओं के मकड़जाल में ऐसा फंसती है कि आख़िरकार उसे अपनी जमीन से ही हाथ धोना पड़ता है. कहानी के अंत में वह अपनी जमीन को बचाने के लिए अनशन करते हुए जान दे देती है. इसी विषयवस्तु पर आधारित एक अन्य महत्वपूर्ण कहानी है, महेश शर्मा की कहानी 'कर्जा'.[31] बैंक आधिकारियों और ग्रामसेवक द्वारा अपना टारगेट पूरा करने के लिए आपसी मिलीभगत से भोले भाले ग्रामीणों के भोलेपन का लाभ उठाकर, उन्हें झूठे सपने दिखाकर सबसिडी पर कर्ज दे दिया जाता है. विकास ने नाम पर अंधाधुंध बांटा गया यह कर्ज ग्रामीणों के जी का जंजाल बन जाता है. अपनी मेहनत से अभावों में ही सही शांतिपूर्वक जीवन जी रहा पूरा गाँव कर्जदार बन जाता है. कहानी का यह वाक्य एक गंभीर टिप्पणी है प्रशसनिक व्यवस्था की कार्यशैली पर- 'आर्थिक लालच की भागदौड़ में लगा, ये गाँव अपना पुराना स्वरूप खो चुका था. शासन के टारगेट के दबाव में एक अच्छा भला गाँव विकास के बदले कर्ज के पहाड़ तले आहें भर रहा था.

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि देश में किसानों को लेकर सरकारों नीयत और नीति बहुत सकारात्मक नहीं रही. केंद्र एवं राज्य सरकारों द्वारा देश-विदेश के तमाम औद्योगिक घरानों को व्यापक पैमाने पर लगभग मुफ्त में जमीन एवं अन्य सुविधाएँ दी जाती रही हैं, बेहद कम ब्याज दर पर अरबों रूपये का ऋण उन्हें दिया जाता रहा है. ऐसे में बहुत से औद्योगिक घराने ऋण लेकर बैठ जाते है, अपने आप को दिवालिया तक घोषित कर देते है और देश से फरार भी हो जाते हैं. उनसे कर्ज का बड़ा हिस्सा सरकार एवं बैंक वसूल नहीं कर पाते हैं. इसके साथ-ही-साथ दशकों से कई देशी-विदेशी कंपनियाँ करोड़ों-अरबों का ऋण लेकर बैठी है, लेकिन उनकी कोई जाँच या पूछताछ नहीं की जाती है या की भी जाती है तो बस रस्मी ही. इन वजहों से बैंकों की हालत यह हो गई है कि भारतीय रिजर्व बैंक ने देश के बैंकों के कुल एनपीए के सितंबर 2021 तक 14.8 प्रतिशत तक पहुँच जाने की चेतावनी दी है. दूसरी ओर जब मसला गरीबों, मजदूरों एवं किसानों का आता है तो कुछ सौ या हजार रुपये के लिए इन्हें सरकारी नुमाइंदे एवं बैंक के कर्मचारी-अधिकारी तथा उनके मुस्टंडे डराते-धमकाते, बेइज्जत करते हैं एवं उन्हें गिरफ्तार किया जाता है. उनकी ज़मीनों के जब्त होने का खतरा बना रहता है.

आजादी से पहले किसानों का शोषण अंग्रेज, जमींदार, सेठ और साहूकार करते थे और अब नेता, नौकरशाह, पूंजीपति और सरकारी कर्मचारी मिलकर करते हैं. सत्ता बदली है लेकिन स्वरूप वही है, मानसिकता वहीं है. अन्यथा क्या कारण है कि देश के तमाम हिस्सों से आकर किसानों को देश की राजधानी नई दिल्ली में नग्न होकर प्रदर्शन तक करना पड़ता है? यहाँ तक कि किसानों के नाम पर राजनीति करने वाले नेताओं की जनसभा में अपने अधिकारों की माँग करते हुए किसान पेड़ से लटक कर आत्महत्या तक कर लेते हैं, फिर भी शासन-सत्ता कुम्भकरणी नींद में सो रही होती है. लंबे समय से चल रहे किसान आंदोलन के प्रति सरकार की बेपरवाही और बेदर्दी सरकारों की किसानों के जीवन और मुद्दों के प्रति असंवेदनशीलता को ही साबित करता है. सिर्फ नारों और जुमलों में 'जय जवान-जय किसान' का उद्घोष करने से न तो किसानों का भला होगा और ना ही देश का. प्रेमचंद से लेकर समकालीन कहानीकारों तक में किसानों की स्थिति, उनकी परेशानियाँ और उनके संघर्षों को व्यक्त किया गया है. आजादी से पूर्व और उसके बाद के कुछ दशकों तक प्राकृतिक प्रकोप के अतिरिक्त जमींदार और साहूकार किसानों की दीनता की मुख्य वजह थे. धीरे-धीरे खेती में नये संसाधनों की जरूरत बढ़ी, जिनसे उपज तो बढ़ी मगर उसके साथ ही किसानों की लागत भी बढ़ती गई और उसकी अन्य समस्याएँ भी बढ़ती गईं. मौजूदा समय में किसान को उसके पैदावार के वास्तविक लाभकारी मूल्य, बाढ़ या अकाल में उसकी फसलों का मुआवजा, उपज का भंडारण, किसानों की मर्जी के विरुद्ध उनकी जमीन का अधिग्रहण और मुआवजा, कारपोरेट खेती, खेती के जरूरी साजोसामान की महंगाई, फसल सुरक्षा, कर्ज का बढ़ता बोझ, विस्थापन और किसानों की आत्महत्याएँ इत्यादि वे प्रमुख ज्वलंत मुद्दे हैं जिन्हें कहानीकारों ने केन्द्रित किया है. प्रेमचंद के विचारों के अनुरूप अगर कला को उपयोगिता की कसौटी माना जाय, तो निस्संदेह हिन्दी कहानियों की सर्वोत्तम उपलब्धि यही होगी कि किसानों से जुड़े इन मुद्दों को बहस विमर्श के केन्द्र में लाया जाय, जिससे उनकी गहराई को पूरी संवेदनशीलता के साथ सामान्य जन तक और नीति निर्माताओं तक पहुंचाया जा सके. जिससे ऐसे उपाय किए जाएँ और नीतियाँ बनाई और कार्यान्वित की जाएँ जिनसे किसानों को सम्मान का जीवन मिल सके और देश की खाद्यान सुरक्षा को सुनिश्चित किया जा सके.

सन्दर्भ

1. https://www.amarujala.com/business/business-diary/farmers-protest-know-about-population-of-farmers-in-india-and-contribution-of-agriculture-sector-in-gdp
2. https://indianculture.gov.in/hi/stories/canpaarana-maen-gaandhaijai-kaa-satayaagaraha
3. https://www.sansarlochan.in/kheda-movement-peasant-hindi/
4. https://hindi.theprint.in/opinion/end-of-zamindari-and-jagirdari-was-written-by-farmers-of-awadh/91141/
5. https://www.drishtiias.com/hindi/daily-updates/daily-news-analysis/moplah-rioters-not-freedom-fighters-ichr-report
6. https://www.ritimo.org/The-Telengana-Movement-Peasant-Protests-in-India-1946-51
7. **https://hi.wikiqube.net/wiki/telangana_rebellion**
8. पृष्ठ-7, हंस, अंक अगस्त 2006, संपादक- राजेन्द्र यादव
9. पृष्ठ 313, प्रेमचंद ग्रंथावली भाग 8, संपादक- राम आनंद, जनवाणी प्रकाशन प्रा. ली., नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1996
10. बलिदान' और विध्वंस नज़राना और बेगार प्रथा पर आधारित अत्यन्त प्रभावशाली कहानियों हैं, जबकि दूध का दाम और पूस की रात किसानों के श्रम के शोषण और हताशा को व्यक्त करने वाली कहानियाँ हैं.
11. पृष्ठ-46, आदमी आदमी है, चिड़िया नहीं, डॉ. शिवशंकर निवास, अनुवाद- वैद्यनाथ झा, परिकथा, अंक- जुलाई-अगस्त, 2019, संपादक- शंकर
12. पृष्ठ 19, दुर्भिक्ष, ललित किशोर सिंह, स्वदेशांक, अक्टूबर-नवंबर 1932, संपादक-प्रेमचंद
13. पृष्ठ 65, विजय, इकबाल बहादुर वर्मा, अक्टूबर-नवंबर 1932, संपादक-प्रेमचंद
14. पृष्ठ-56, फंदा - नर्मदेश्वर, परिकथा, अंक- जुलाई-अगस्त, 2019, संपादक- शंकर
15. पृष्ठ 817, महेश, शरतचंद चटोपाध्याय, हंस, जून 1938 संपादक-श्रीपत राय
16. पृष्ठ-41, बेल, राजेंद्र लहरिया मार्च 1989, हंस, संपादक राजेंद्र यादव
17. पृष्ठ 12 हड्डियों का पुल फणीश्वर नाथ रेणु, सितंबर 1996 संपादक राजेंद्र यादव
18. पृष्ठ 68, पोटली में गाँव - रणीराम गढ़वाली, परिकथा, अंक- जुलाई-अगस्त, 2019, संपादक- शंकर
19. पृष्ठ 75, ठौर- सत्येन्द्र प्रसाद श्रीवास्तव, परिकथा, अंक- जुलाई-अगस्त, 2019, संपादक- शंकर
20. https://www.rachanakar.org/2016/06/2016-2_22.htm
21. https://www.rachanakar.org/2016/06/2016-2_22.htm
22. पृष्ठ-16, गुहार, शिव किशोर, परिकथा, वर्ष 12, अंक 75, जुलाई-अगस्त, 2018, संपा शंकर
23. पृष्ठ 31, सेमर का फूल, सुरेश कांटक, हंस, अंक दिसंबर 1993, संपादक राजेंद्र यादव
24. पृष्ट 83, आधी जमीन, शिव किशोर, परिकथा, अंक जुलाई-अगस्त 2019, संपादक शंकर
25. https://hi.wikipedia.org/wiki/हरित_क्रांति_(भारत)
26. https://hi.wikipedia.org/wiki/हरित_क्रांति_(भारत)
27. बोल काश्तकार, संदीप मील, पल प्रतिपल, अंक 83, जुलाई-सितंबर-2019, संपादक- देश निर्मोही, आधार
28. https://hi.wikipedia.org/wiki/विशेष_आर्थिक_क्षेत्र
29. मुआवजा, कृष्णकांत, परिकथा, अंक जनवरी-फरवरी 2013 संपादक- शंकर
30. जहरीली रोशनियों के बीच, मदन मोहन, कथादेश, अंक - मई 2012, संपादक- हरिनारायण
31. पृष्ठ-93, कर्जा, महेश शर्मा, शिव किशोर, परिकथा, जुलाई-अगस्त, 2019, संपादक- शंकर
32. https://www.indiatoday.in/business/story/rising-bad-loans-may-hit-banks-hard-in-2021-warns-rbi-report-1758229-2021-01-12